International Journal of History 2024; 6(2): 337-339

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2024; 6(2): 337-339
Received: 07-11-2024
Accepted: 10-12-2024

हिमांशु
व्याख्याता इतिहास, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, सांगानेर, जयपुर, राजस्थान, भारत

डॉ. प्रियंका चौहान
सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, राजकीय महाविद्यालय चाकसू, जयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
हिमांशु
व्याख्याता इतिहास, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, सांगानेर, जयपुर, राजस्थान, भारत

मुगलकालीन बैंकिंग प्रणाली

हिमांशु, प्रियंका चौहान

सारांश
मुगलकाल में मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था का विकास हो गया था। इस काल के अन्तर्गत बैंकिंग प्रणाली व उसके विकास अर्थात मुद्रा के व्यापक प्रसार व चलन के संदर्भ में अध्ययन करना अतिआवश्यक हो जाता है। प्रारम्भ में मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था गाँव से ही संचालित थी। गाँवों में भू–राजस्व, नगदी के रूप में भी वसूल किया जाता था। प्रतेक गाँव में सर्राफों का अलग वर्ग होता था। हर छोटे–बड़े गाँव में सर्राफ बैंकर का कार्य करते थे अर्थात रूपया भेजने और हुंडी जारी करने का कार्य भी करते थे। मुगलकाल में सर्राफों द्वारा हुंडियों का प्रयोग रकम भेजने के लिये व ऋण प्राप्त करने के लिये तथा व्यापारियों को सुविधा प्रदान करने आदि विभिन्न रूपों में किया जाता था। चेक और ड्राफ्ट के रूप में प्रयुक्त इन हुंडियों की तुलना आधुनिक बैंकिंग सुविधाओं से की जा सकती है एवं जिस प्रकार ये ऋण के लिये प्रयुक्त होती थी, वह भी तत्कालीन परिस्थितियों में अपने आप में सफल बैंकिंग सुविधाओं का संकेत देती हैं। हुंडियों के सफल संचालन से व्यापारी वर्ग ही नहीं अपितु प्रशासन व अमीर वर्ग यहाँ तक कि जन साधारण वर्ग भी लाभान्वित होते थे। मुगलकाल में बैंकिंग की पर्याप्त सुविधायें विद्यमान थी। सर्राफों द्वारा बीमा भी किया जाता था। मुगलकाल में अमीर वर्ग के लोग भी ऊँची दरों पर ऋण लेने के आदी थे। जिस कारण अकबर ने मजबूरन अमीरों को राज्य की ओर से ऋण देने की सुविधा प्रदान की थी। जिसे 'मुसादाता' कहा जाता था। यह ऋण विशेष परिस्थितियों में दिया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगलकाल में एक ऐसी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ था जो मुद्रा पर आधारित थी। जिसमें हुंडी बीमा, बैंकिंग आदि सभी विकसित वाणिज्य पद्धतियाँ विद्यमान थी। सूदखोरी, तात्कालीक समाज की एक सामान्य विशिष्टता थी। जिसका प्रयोग वाणिज्य तथा कृषि में व्यापक परिवर्तन लाने के लिये नही किया जाता था और न ही पूंजी की वृद्धि, व्यापार और शिल्प में उन्नति के लिये बल्कि अपनी वृद्धि के लिये। बाद में सूदखोरी एक ऐसी संस्था के रूप में विकसित हो गई जिस पर सामान्य जन और विशिष्ट जन दोनो ही आश्रित थे। परन्तु इस विशिष्ट मौद्रिक व्यवस्था की स्थापना और विकास के बाद भी पूंजीवाद का विकास नहीं हो पाया। जिसका कारण शायद यह था कि बैंकिंग व्यवस्था का विकास वाणिज्य की व्यापकता के अनुरूप हुआ था। किन्तु यह वाणिज्य अपरिवर्तित हस्तशिल्प उत्पादन पर आधारित था और बैंकर की पूंजी का उत्पादन की प्रक्रिया पर कोई नियंत्रण नही था। अतः हम कह सकते हैं कि मुगलकाल में बैंकिग की सुविधाओं और सुविकसित बैकिंग प्रणाली का उत्पादन तकनीक के विकास से कोई सम्बंध नही था।

कुटशब्दः पूंजीवाद, हुंडी, बीमा, बैंकिंग, ऋण, अर्थव्यवस्था, सूदखोरी, सर्राफ

प्रस्तावना
भारत में मुगलकाल 350 वर्षों का माना जाता है। परन्तु सन् 1526 में बाबर द्वारा जिस मुगल वंश की स्थापना की गई थी उसका पतन सन् 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही प्रारंभ हो गया था। मुगलकालीन प्रारंभिक शासकों ने न केवल भारत में राजनैतिक सत्ता की स्थापना की बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक रूप से भी भारत के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। वर्तमान युग में भारत का संसार के वाणिज्य में ऊँचा तथा सम्मानपूर्ण स्थान रहा। यद्यपि हमारे देश का व्यापारिक इतिहास प्राचीन काल से प्रारंभ गया था। हड़प्पा सभ्यता में न केवल हमारे देश का आन्तरिक व्यापार उन्नत अवस्था में था बल्कि मिश्र और मैसोपोटामिया से भी हमारे व्यापारिक सम्बंध काफी अच्छे थे। वर्तमान युग की आधुनिक व्यापारिक प्रतिष्ठा मुगलकालीन देन है। इसमें संदेह नही कि पिछले थोड़े समय में हमारा व्यापार और बैंकिंग प्रणाली बहुत विस्तृत हो गई एवं उसका रूप भी परिवर्तित होता जा रहा है। किन्तु जो तत्व इस रूपान्तर के लिये उत्तरदायी है, वे भी मुगलकाल में उत्पन्न हो चुके थे। यह युग आर्थिक समृद्धि का युग था। आन्तरिक और बाह्य व्यापार उन्नत अवस्था में थे। अकबर के शासनकाल में दिल्ली की केन्द्रीय टकसाल एक प्रधान अधिकारी के आधीन थी। इसी प्रकार बंगाल, लाहौर, जौनपुर, अहमदाबाद एवं पटना की प्रान्तीय टकसाले भी महत्वपूर्ण अधिकारी के अधीन थी। शाहजहां के राज्य काल में एक बहुत महत्वपूर्ण टकसाल सूरत में थी। अकबर के समय सोने के सिक्के अलग–अलग वजनों एवं मूल्यों में छब्बीस किस्मों के थे। चाँदी एवं ताँबे के अलग–अलग वजन के सिक्के भी चलाये गये थे। अकबर के समय में लगभग 175 ग्रेन की चाँदी

का रूपया मूल्य में दो शिलिंग तीन पेंस (स्टार्लिंग) के बराबर होता था। अकबर ने एक वर्गाकार चाँदी का रूपया भी चलाया था जिसका नाम था जलाली। अकबर के समय ताँबे के सिक्के का नाम दाम था। इसका वजन 323.5 ग्रेन था। हिसाब के लिये यह 25 भागों में विभाजित था, जो जीतल कहलाते थे। अकबर तथा उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में साम्राज्य के व्यापारिक काम सोने की गोल मुहरों तथा दामों में किये जाते थे। अकबर के समय के सिक्के धातु की शुद्धता वजन की पूर्णता तथा कलात्मक सम्पादन की दृष्टि से उत्तम थे। अकबर के समय और उसके बाद 1627 तक रूपये का मूल्य चालीस दामों के बराबर था।

टकसाल व्यवसायः आधुनिक युग की भाँती मुगलकाल में भी सर्राफ व्यवसाय, जाति व्यवस्था पर आधारित था और इसका फायदा वाणिज्य संलग्न समुदायों द्वारा ही उठाया जाता था। मुगलकाल में चूंकि सरकारी टकसालों में चाँदी आदि किसी धातु को देकर सिक्के ढलवाने की सुविधा थी, और इन सिक्कों की शुद्धता की परख सर्राफ समुदाय के लोग ही करते थे। क्योंकि कालांतर में मुद्रा के मूल्य में कमी आ जाती थी। इसलिये सर्राफ उसका मूल्य निर्धारित करने के साथ उसकी कटौती की दरे भी निर्धारित करते थे। इस कार्य के लिये वह सिक्कों के 1/30 या 1/16 प्रतिशत की दर से शुल्क लेते थे। विदेशों से आने वाली चाँदी आदि को खरीदकर एवं पुरानी मुद्राओं को खरीद कर टकसाल में सिक्के ढ़लवाने के काम में भी सर्राफ संलग्न रहते हैं। मुगलकाल मे यद्यपि सम्पूर्ण भारत में एक सी मुद्राओं का प्रचलन था। परंतु दक्षिण भारत में स्थानीय सरकारें विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन अपने–अपने क्षेत्रों में करती थी। इन स्थानीय सिक्कों को बदलने का भी शुल्क होता था। इन सिक्के को बदलने का कार्य सर्राफों द्वारा शुल्क लेकर किया जाता था। सन् 1665–66 में ताँबे की कमी के कारण ताँबे के सिक्के दाम का प्रचलन कम हो गया था। तो अहमदाबाद के सर्राफों ने अपनी–अपनी सांकेतिक मुद्रायें जारी की थी और उन्हें ऊँची दर पर बेचते थे। इससे ये पता चलता है कि सर्राफों के पास बैकिंग सम्बन्धी व्यापक अधिकार थे। वे टकसालों से भी सम्बंध रखते थे।

हुंडी व्यवस्थाः सर्राफों का एक महतवपूर्ण कार्य हुंडी को जारी करना व छुड़ाना भी था। हुंडी एक प्रकार का आज्ञा–पत्र होता था। जिस पर किसी प्रकार की शर्त नहीं होती थी। इसमे एक स्थान से दूसरे स्थान पर रकम प्रेषित की जाती थी। आधुनिक मनीआर्डर से इसकी तुलना की जा सकती है। जैसे चौक और ड्राफ्ट– द्वारा दूसरे स्थान पर रकम आहरण की जाती है। उसी तरह हुंडियों द्वार भी पैसा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाता था। अगर कोई यात्रा की असुविधा, खतरों तथा व्यय से बचना चाहता था तो वह सर्राफ के पास जाकर अपनी रकम जमा कर देता था। सरार्फ उसके बदले उसे एक हुंडी देता था जो जस सर्राफ के स्थान विशेष के एजेंट या करिंदे का नाम सम्बोधित होता था। हुंडी में लिखित राशि सम्बद्ध व्यक्ति को प्रदान कर दी जाती थी। फबुल फजल की अनुसार इस प्रकार हुडियाँ अदायगी के लिये आज्ञापत्र थीं। इनके द्वारा रकम की अदायगी बड़ी पाबंदी के साथ की जाती थी। मुगलकाल में विभिन्न स्थानों पर हुंडियों की अदायगी के सम्बंध में अलग–अलग शुल्क भी लिया जाता था। दिल्ली से आगरा एक प्रतिशत, दुरहानपुर से अहमदाबाद ढ़ाई प्रतिशत, थट्टा से अहमदाबाद एक प्रतिशत, अहमदाबाद से खंवात सात/दस प्रतिशत, सूरत से बड़ौदा सात/आठ प्रतिशत तथा इस शुल्क के बराबर आगरा में अहमदाबाद ढ़ाई प्रतिशत से कुछ अधिक था। जैसे कि कुछ आधुनिक समय में बैंकों द्वारा इस प्रकार की सुविधाये प्रदान करने हेतु कमीशन लिया जाता है और समय–समय पर वह कमीशन बदलता भी रहता है। मुगल शासकों का साम्राज्य बहुत विस्तृत था। जिस कारण शासकों को अधिकारियों को प्रशासनिक स्तर पर व निजी स्तर पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भारी रकम मेजने की आवश्यकता पड़ती थी। यह कार्य भी सर्राफों द्वारा ही किया जाता था।

हुंडियों का प्रयोग मध्यकाल में अल्प समय के लिये ऋण की व्यवस्था करने के लिये भी होता था। हुंडी का सामान्य अर्थ है 'विनिमय साध्य विलेख' जिससे एक पक्ष द्वारा तृतीय पक्ष को मुदा की भुमतान का आदेश दिया जाता था और इस स्थिति में प्रथम और द्वितीय पक्ष के बीच मुद्रा के लेन देन के बिना व्यापार किया जाता था। इसी तरह की सुविधा मुगलकाल में व्यापारियों को सर्राफों द्वारा दी जाती थी। इस व्यवस्था में हुंडियों को सर्राफों द्वारा चुकाने या हुंडी धारक इन दोनों में से किसी से भी हुंडियों को कम दामों में खरीद लिया जाता था। इस प्रकार सर्राफ इसमें हुंडी को जारी करते समय भी लाभ उताते थे और जब तृतीय पक्ष द्वारा रूपये की अदायगी की जाती थी या हुंडी को छुड़ाया जाता था तब भी उन्हें लाभ होता था जो कि हुड़ियों पर कटौती की दर के रूप में उन्हें मिलता था। ट्रेविनियर ने सूरत से जारी की गई विभिन्न प्रकार की हुंड़ियों पर विभिन्न शहरों में कटौती की दरों का विवरण दिया है– लाहौर में 6 प्रतिशत, आगरा में 4 से 5 प्रतिशत, बुरहानपुर में 2 प्रतिशत, पटना में 7 से 8 प्रतिशत, ढाका में 10 प्रतिशत आदि। यहाँ यह उल्लेख भी आवश्यक है कि कटौती उन्ही हुंड़ियों पर होती थी जो महत्वपूर्ण व्यापारियों से सम्बंध रखती थी। कटौती या शुल्क की मात्रा आदेशिती के ऋण के अनुरूप घटती–बढ़ती रहती थी। कटौती में कई प्रकार के शुल्क भी शामिल थे। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये शुल्क के अतिरिक्त इसमें हुंडी की राशि पर आने वाला ब्याज भी शामिल रहता था। जैसे अदायगी दो महीनों में होती थी तो उसमें वस्तुओं का बीमा शुल्क भी शामिल होता था। व्यायरियों द्वारा इस प्रकार ली जाने वाली हुंडियों को जोखम हुंडी कहा जाता था। जिसके साथ कुछ शर्तें भी जुड़ी रहती थी, जैसे कि वे वस्तुयें जिनके बदले ऋण लिया गया हो खो जाती है या नष्ट हो जाती है तो हुंडी धारक को या उसके आदेशक को उसका पूरा नुकसान उठाना पड़ता था। हुंडिया भले ही रकम भेजने के लिये या ऋण प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त होती थी, पर उनमें समरूपता दिखाई पड़ती थी। वे हस्तांतरित हो सकती थी। उन्हें खरीदा व बेचा जा सकता था, और आदेशिती तक पहुंचाने से पहले इसे कई लोगो द्वारा वहन भी किया जा सकता था। हुंडियों में एक विशेषता यह मी थी कि प्रत्येक हुंडी विक्रेता, आदेशित द्वारा हुंडी को अस्वीकार करने की स्थिति में अगले खरीददार को मूलधन अदा करने का लिखित वचन देता था। इसे अनुमोदन प्रणाली के अन्तर्गत रखा गया था। इस प्रकार हम देखते है कि मुगलकाल में सराफों द्वारा हुंडियों का प्रयोग रकम भेजने के लिये, ऋण प्राप्त करने के लिये, व्यापारियों को सुविधा प्रदान करने आदि विभिन्न रूपों में किया जाता था। चेक और ड्राट के रूप में प्रयुक्त इन हुडियों की तुलना आधुनिक बैंकिग सुविधाओं से की जा सकती है एवं जिस प्रकार ये ऋण के लिये प्रयुक्त होती थी, वह भी तत्त्कालीन परिस्थितियों में अपने आप में सफल बैंकिग सुविधाओं का संकेत देती हैं। हुंडियों के सफल संचालन से व्यापारी वर्ग ही नहीं अपितु प्रशासन अमीर वर्ग यहाँ तक कि जन साधारण वर्ग भी लाभान्वित होता था। इस प्रकार हम देखते है कि मुगलकाल में बैंकिंग की पर्याप्त सुविधायें विद्यमान थी। सर्राफो द्वारा बीमा भी किया जाता था, यह बीमा मुख्यतः वस्तुओं की निकासी व जहाजों पर किया जाता था। निकासी की वस्तुओं का बीमा दो प्रकार से होता था। एक तरीका था कि बीमा करने वाला सामान का दायित्व स्वयं लेता था और स्वयं ही उसे पहुंचाने की व्यवस्था भी करता था। दूसरे तरीके में बीमा करने वाले पर वस्तुओं को वहन करने आदि का दायित्व नही रहता था। बीमा शुल्क बहुत अल्प मात्रा में देना होता था। मुगलकाल

में आधुनिक बैंकों की भांति रूपया जमा करनें की एवं ऋण देने की व्यवस्था भी थी। साहूकारों ओर महाजनों द्वारा तो लेन–देन किया ही जाता था, परन्तु इंग्लिश फैक्ट्री रिकार्डस से ज्ञात होता है कि सर्राफो द्वारा भी यह कार्य किया जाता था। प्रारंभ में अंग्रेज अपनी सारी रकम सर्राफों के पास जमा कर देते थे और सर्राफ जमा की गई रकम को अधिक ब्याज पर चढ़ा कर ऋण देने में प्रयोग करते थे। अंग्रेजों द्वारा रूपया जमा करने के अतिरिक्त भारतीयों द्वारा भी सर्राफों के पास अपना पैसा जमा करवाया जाता था, जिस पर वे उन्हें पर्याप्त ब्याज देते थे। सूदखोरी जैसे शब्द जो उस काल में सुनाई देते थे, वह भी इस बात के सूचक थे कि रूपया जमा करने एवं उन्हें ऋण पर देने की पर्याप्त व्यवस्था थी। साथ ही सूद पर रूपया उधार देने का कारोबार यहाँ काफी प्रगति पर था। सूदखोरी के कई प्रकार उस समय प्रचलित थे। जिसमें एक प्रकार था– कृषि प्रधान सूदखोरी, जिसमें महाजन से रूपया उधार लेने की आवश्यकता काश्तकारों को लगान चुकाने के लिए पड़ती थी, इसकी ब्याज की दर बहुत ऊँची रहती थी ये ऋण दो–तीन महीनों के लिये ही दिये जाते थे, और न चुकाने की स्थिति में ब्याज को मूलधान में भी शामिल कर दिया जाता था और फिर ब्याज उस पूरी राशि पर लागू होता था। इसके अतिरिक्त कभी–कभी गाँव में वाणिज्य आदि के उद्देश्य से भी भुगतान वस्तु के रूप में भी किया जा सकता था।

काश्तकारों के लिए ऋण व्यवस्थाः ऋण लेने की इस व्यवस्था में काश्तकारों को ब्याज की दर बहुत ज्यादा चुकानी पड़ती थी। इस कारण तथा कई कारणों से मुगल प्रशासन ने काश्तकारों को बीज, पशु आदि खरीदने के लिये ऋण प्रदान करने की सुविधा भी प्रदान की थी। ये ऋण मुखिया के माध्यम से दिये जाते थे और वे ही अदायगी के बारे में गारंटी लेते थे और संभवतः इस गारंटी के लिये वे काश्तकारों से कमीशन लेते थे। जिसकी दरे निश्चित नहीं थी। साधारण काश्तकारों के अतिरिक्त मुगलकाल में जमीदार और समृद्ध किसान भी कई कारणों से महाजनों से रूपया उधार लिया करते थे। कृषि कार्य से सम्बंधित जब रूपये का लेन–देन होता था तो वह कृषि प्रधान सूदखोरी कहलाती और जब व्यापार–वाणिज्य हेतु शहरों में एवं गावों में व्याज पर रूपये का लेन–देन होता था तो वह वाणिज्यगत सूदखोरी कहलाती थी। गैर कृषि कार्यों में व्यस्त दस्तकार, मजदूर छोटे दुकानदार तथा बड़े व्यापारी अमीर और उनके अश्रित तरह–तरह के लोग सूदखोरी का सहारा लेते थे। सामान्य कास्तकार अपनी जीविका के लिये ऋण पर आश्रित रहता था। जिन व्यापारियों से वे ऋण लेते थे वही उनके सामान के खरीदार भी होते थे, इस स्थिति के कारण बंगाल और गुजरात में एक नई व्यवस्था सामने आई, जिसे 'ददनी' कहा जाता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापारी दस्तकारों को जो अधिकांश जुलाहे होते थे, नगद पैसा उधार देते थे। बदले में दस्तकार, व्यापारी की इच्छानुसार नियत समय में कपड़ा बना कर देता था। इसके अतिरिक्त कभी–कभी व्यापारी कच्चे माल की भी आपुर्ती करते थे। मूल और ब्याज दोनों ही व्यापारियों द्वारा वापस लाई गई वस्तुओं द्वारा चुकाया जाता था। एक व्यवस्था और भी थी, जिसमें ऋण प्राप्त करने के लिये व्यापारियों को मुद्रा बाजार की सेवायें सर्राफ व्यापारियों का रूप में प्राप्त होती थी। यहाँ पर ऋण प्रदान करने वाले का ऋण प्राप्त करने वाले के व्यापार पर कोई नियंत्रण नहीं होता था। मुद्रा बाजार में इस तरह का अल्पकालीन ऋण हुंड़ियों के माध्यम से भी प्राप्त किया जाता था। जिसमें ऋण प्राप्त करने वाले व्यक्ति के द्वारा हुंडी को सर्राफ को बेच दिया जाता था, जिसके लिये उसे हुंडी में से कटौती शुल्क देना होता था। इस प्रकार हुंडियों के माध्यम से व्यापार में पूंजी निवेश किया जाता था। एक विशिष्ट प्रकार का निवेश और भी था, जो सामान्य ऋणों से अलग था, जिसके अन्तर्गत व्यापार के लिये बाहर जाने वाले जहाजों में व्यापारी को उधार दिया गया रूपया महाजन द्वारा रखवा दिया जाता था, जिसका प्रयोग गंतव्य स्थान पर पहुंचने पर किया जाना होता था। चूंकि इसमें सारी जिम्मेदारी महाजन की होती थी, इसलिये वह इस विशिष्ट प्रकार के निवेश में ब्याज अधिक लेता था। इस प्रकार हम देखते है कि व्यापार हेतु छोटे–बड़े सभी स्तरों पर विभिन्न प्रकार के ऋणों की सुविधा उस समय थी। हलाकि ब्याज की दरे काफी अधिक हुआ करती थी। परंतु इसके बाद भी सारा कारोबार इन्हीं उपलब्ध ऋणों के माध्यम से होता था। वाणिज्यगत पूंजी जुटाने के लिये बड़े–बड़े व्यापारियों को शासकों की तरफ से भी ऋण प्रदान किये जाते थे। इसके अतिरिक्त कृषक कभी–कभी लगान अदा करने के लिये महाजन से ऋण लेते थे और इस ऋण की वसूली में महाजन फसल के एक हिस्से के हकदार बन जाते थे।

निष्कर्ष

मुगलकाल में अमीर वर्ग के लोग भी ऊँची दरों पर ऋण लेने के आदी थे। जिस कारण अकबर ने मजबूरन अमीरों को राज्य की और से ऋण प्रदान करने की सुविधा प्रदान की थी, जिसे मुसादाता कहा जाता था। यह ऋण विशेष परिस्थितियों में दिया जाता था। इस प्रकार हम देखते है कि मुगलकाल में एक ऐसी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ जो मुद्रा पर आधारित थी। जिसमें हुंडी बीमा, बैंकिंग आदि सभी विकसित वाणिज्य पद्धतियाँ विद्यमान थी। सूदखोरी, तात्कालीक समाज की एक सामान्य विशिष्टता थी, जिसका प्रयोग वाणिज्य तथा कृषि में किसी प्रकार का व्यापक परिवर्तन लाने के लिये नहीं किया जाता था और न ही पूंजी की वृद्धि, व्यापार और शिल्प में उन्नति के लिये बल्कि अपनी वृद्धि के लिये स्वयं पूंजी उन पर आश्रित थी। बाद में सूदखोरी एक ऐसी संस्था के रूप में विकसित हो गई जिस पर सामान्य जन और विशिष्ट जन दोनो ही आश्रित थे, परन्तु इस विशिष्ट मौद्रिक व्यवस्था की स्थापना और विकास के बाद भी पूंजीवाद का विकास नहीं हो पाया, जिसका कारण शायद यह था कि यद्यपि बैंकिंग व्यवस्था का विकास वाणिज्य की व्यापकता के अनुरूप हुआ था, किन्तु यह वाणिज्य अपरिवर्तित हस्तशिल्प उत्पादन पर आधारित था और बैंकर की पूंजी का उत्पादन की प्रक्रिया पर कोई नियंत्रण नहीं था। अतः हम कह सकते है कि मुगलकाल में बैंकिग की सुविधाओं और सुविकसित बैकिंग प्रणाली का उत्पादन तकनीक के विकास से कोई सम्बंध नही था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, रामशरण (1983) : 'पर्सपेक्टिव इन सोशल एण्ड इकॉनोमी हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया', दिल्ली।
2. शर्मा, रामशरण (1956) : 'लाइट ऑन अर्ली इंडियन सोसायटी एण्ड इकॉनोमी', बम्बई।
3. व्यास, नानुराम (1954) : 'रामायण कालीन समाज, सस्ता साहित्य मंडल', नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण।
4. विलियम इरविन, लेटर मुगल्स, भाग–1 तथा 2. कलकत्ता, 1921
5. निजामुद्दीन अहमद, तबकाते अकबरी, भाग–3 (कलकत्ता 1636–40) 1927–35 अनु वी. डे.।
6. रामप्रसाद त्रिपाठी, राइज एंड फाल आफ दि गुगल इम्पायर इलाहाबाद 19561
7. सी. जे. ब्राउन, दि क्वायन्स आफ इंडिया कलकत्ता –19221
8. श्री राम शर्मा, मुगल गवर्नमेंट एण्ड एडमिनिस्टेशन, बम्बई 19511
9. यूसुफ हुसैन खॉ, सोशल एंड इकानोमिक कन्ट्रीब्यूसन इन इमेडिवेल इंडिया, आई. सी. 1956 भाग–301
10. यूसुफ अली खाँ, नेडिबल इंडिया, सोशल एंड इकोनोमिक कंडीशन, लंदन 1932